उपसंहार

आधी आबादी होकर भी स्त्री हर क्षेत्र में शोषित होती रही । कई सालों तक वह सहती रही । धीरे-धीरे वह अपने आपको संभालने लगी । उसके मन को सहारा देने केलिए नारीवादी आंदोलन ने भरपूर साथ दिया । वह जागृत होती गई । घर की कैद से वह छूट गई । हर क्षेत्र में उसके लिए प्रवेश द्वार खोल दिये गये । यह बात ज़रूर है कि उसके रास्ते में कई रुकावटें आती रहीं । पर वह उन सबको धैर्य और साहस के साथ हटाती रहती है ।

यूरोपीय देशों में मताधिकार से नारी अधिकारों की माँगों की शुरुआत हुई । माँगों का दायरा बढ़ने लगा और सम्पत्ति में भी स्त्री अपना हक माँगने लगी । मेरी वाल्स्टानक्राफ्ट जैसे लोगों ने स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया । रोज़गार, राजनीति आदि सभी जगहों में स्त्री के लिए जगह की माँग की । समाज का पूर्ण विकास तभी हो सकता है जब सभी आज़ाद हो । अर्थात् वर्चस्व रहित समाज का निर्माण ही नारीवाद का उद्देश्य था । इस संदर्भ में कई किताबें लोगों केलिए प्रेरक बनीं- मेरी वाल्स्टानक्राफ्ट की 'थोट्स ऑन एजुकेशन ऑफ डॉटर्स', 'दि विंडीकेशन ऑफ दी राएट्स ऑफ वुमन', फ्रिडरिक एंजेल्स की 'द ओरिजिन ऑफ द फामिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड द स्टेट', वर्जीनिया वुल्फ की 'ए रूम फॉर वण्स ओण', सिमोन दि बुआ की 'दि सेकण्ड सेक्स', बेटी फ्राइडन की 'द फेमिनिन मिस्टीक' । ये सारी किताबें स्त्री विमर्श को और अधिक गंभीर बनाती गईं । 1980 के बाद तो स्त्री के वैश्विक और सांस्कृतिक मुद्दों पर ज़ोर दिया जाने लगा । तकनीकी युग में स्त्री को और अधिक मज़बूत बनाने में स्त्री विमर्श एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है ।

स्त्री को सहारा देने में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका श्लाघनीय है । सन् 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया और सन् 1976 से लेकर सन् 1985 तक के समय को अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक के रूप में घोषित किया गया । सन् 1979 में महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने केलिए अभिसमय को अपनाया गया । इसको स्वीकार करके इसके सदस्य देश अपनी महिला नागरिकों के विरुद्ध सभी भेदभावों को मिटाने केलिए कदम रखने लगे । इस तरह महिला मानवाधिकार की व्यापकता दिन-ब-दिन बढ़ती गई ।

स्त्री को आगे ले आने की कोशिश हर तरह से की जाने लगी। भारत में भी इसका असर हुआ। सारे प्रयासों में अड़चन डालनेवाले कारण के रूप में पुरुष वर्चस्व कायम रहा। इस वर्चस्व को तोड़ना नारीवादी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण कार्य रहा। यह, परिवार से लेकर हर सामाजिक क्षेत्र में इस तरह कायम रहा कि स्त्री के लिए संवैधानिक आसरा होकर भी उसका भरपूर फायदा नहीं उठा पा रही थी। इस वर्चस्व के फलस्वरूप कई प्रथाएँ प्रचलन में थीं। इस दलदल से स्त्री को निकालना एक भगीरथ प्रयत्न था। इसके अलावा वह कई तरह के शोषण की शिकार बनी हुई थी। माँ की कोख से लेकर आमरण उसे कई तरह की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। इस तकनीकी दौर में उसपर हो रहे अत्याचारों की तादाद बहुत अधिक बढ़ गई है। पोर्णोग्राफी, सैबर क्राइम आदि अपराध गंभीर होते जा रहे हैं।

भारत के संदर्भ में देखें तो उन्नीसवीं सदी में महिला उद्धार के कदम उठाए जाने लगे। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, रमाबाई, ज्योतिबा फूले ; केरल के नारायण गुरू, अय्यनकाली, वी.टी भट्टतिरिपाट आदि के अथक प्रयास से स्त्री जीवन में सुधार आया। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री में भी राष्ट्रीयता की भावना प्रस्फूटित हुई। देश को आज़ादी दिलाने के कर्म में भागीदार होकर स्त्री का आत्मविश्वास बढ़ा। उसने हर तूफान का, सामना करने का मन बना लिया। शिक्षा की लहर उमड़ पड़ी और स्त्री का बौद्धिक विकास होने लगा। स्त्री संघठन का उदय हुआ। महिला कामगर भी संगठित होने लगीं। स्वतंत्रा प्राप्त होने के बाद स्त्री का मुद्दा कमज़ोर पड़ने लगा। इससे नारीवादी आंदोलन पूरी शक्ति के साथ फिर से अपनी धार तेज़ करने लगा। लिंग आधारित भेद भाव को मिटाने का प्रयास शुरू हुआ, शराब विरोधी आंदोलन शुरू हुआ, मूल्यवृद्धि के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाई, दहेज प्रथा का विरोध किया गया।

स्त्री विमर्श एक ऐसा सिद्धांत है जो पूरे समाज का मन बदलने में सक्षम है। यह, स्त्री को हर कोण से परखकर उसके अस्तित्व को मौलिक रूप में स्थापित करता है। यह स्त्री की अस्मिता को बनाए रखने की बात पर ज़ोर देता है। स्त्री विमर्श की बात करते वक्त महादेवी की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' का ज़िक्र ज़रूरी है। महादेवी वर्मा के नारी विमर्श में भारतीय नवजागरण का प्रभाव हम देख सकते हैं। वे मानती है कि स्त्री समाज का आधा हिस्सा है। समाज निर्माण में उसकी भूमिका मूल्यवान है। लेकिन पुरुष द्वारा बनायी गयी सामाजिक व्यवस्था में उसका स्थान हाशिए पर है। पुरुषमेधा समाज

हमेशा स्त्री के चरित्र को 'आदर्श' शब्द के साथ जोड़ता है। महादेवी वर्मा इसके खिलाफ है। महादेवी वर्मा का नारी विमर्श पुरुष के खिलाफ नहीं है बल्कि पुरुष मेधा समाज के खिलाफ है। वे नारी को दबाकर रखने वाली हर तरह की कोशिशों का विरोध करती हैं। उन्होंने समाज की प्रगति के लिए पुरुष के देवत्व और स्त्री के दासत्व का तिरस्कार अनिवार्य माना है। वे शिक्षा की महिमा को अच्छी तरह जानती थीं। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री का आना यह संकेत करता है कि समाज का विकास हो रहा है। साहित्य का अध्ययन व्यक्ति के मानसिक विकास के लिए सबसे अनिवार्य माना जाता है। यह शिक्षित स्त्री के विचारों को भी बदल देता है। महादेवी वर्मा के अनुसार संभ्रांत परिवार की स्त्री के लिए इसकी अधिक ज़रूरत है। मानसिक और विचारात्मक जड़ता से बाहर निकालने के लिए साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है।

हिंदी में 'श्रृंखला की कड़ियाँ' से स्त्री विमर्श की एक सशक्त शुरुआत हुई थी। इसके बाद कई लेखिकाओं ने इस सिलसिले को आगे बढ़ाया। तसलीमा नसरीन की 'औरत के हक में', 'औरत के लिए औरत', कात्यायनी की 'दुर्ग द्वार पर दस्तक' आदि किताबों ने स्त्री स्वत्व की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। ये अपनी ताकत पर भरोसा करने का संदेश देती हैं तथा दुनिया के बारे में सोच-सोचकर अपनी इच्छाओं को दबाकर रखने के सख्त खिलाफ है। ये स्त्री को रिश्तों से इतर अपनी एक पहचान बनाने के पक्ष को दृढ़ करती हैं। कात्यायनी जैसी लेखिका मार्क्स के सिद्धांतों के पक्षधर है। ये स्त्री की आर्थिक स्थिति को सबल होना ज़रूरी मानती हैं। पुरुष की रियायतों में जीने के बिल्कुल खिलाफ है। साथ-ही-साथ नए दौर की उपभोक्ता संस्कृत्ति और बेगानेपन से स्त्री को बचकर रहने की सलाह भी देती हैं। प्रभा खेतान तो स्त्री-पुरुष की समानता चाहने के साथ-साथ यह भी चाहती हैं कि पुरुष स्त्री की स्वतंत्रता और समानता को महत्व दे और परिवार में उचित सम्मान दिलाए। रमणिका गुप्ता जैसी लेखिका स्त्री को बाज़ार में बिकाऊ चीज़ के रूप में देखना पसंद नहीं करतीं बल्कि उसे मेहनतकश, आत्मनिर्भर मनुष्य के रूप में देखना पसंद करती हैं। स्त्री तो ऐसी होनी चाहिए कि वह अन्याय का सहन बिलकुल न करे और पूरे साहस के साथ उसका विरोध हमेशा करती रहे। इस जोश में पुरुष की बुराइयों का अनुकरण न करने की चेतावनी भी मृणाल पाण्डे जैसी लेखिकाएँ देती हैं। स्त्री विमर्श को लक्ष्य करके लिखने वाली हर लेखिका यही चाहती है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक- हर क्षेत्र में स्त्री बराबर रहे। इसके द्वारा

समाज की आधी आबादी के महत्व को साबित करे। बंधन को तोड़ने से पहले स्त्री के मन में समाए हुए जड़ता के बोध को तोड़ने की कोशिश स्त्री विमर्श करता है।

नाटक के संदर्भ में स्त्री विमर्श को परखने से यह समझ सकते हैं कि साहित्य की अन्य विधाओं के समान इस विधा में भी स्त्री को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भारतेंदु के ज़माने से ही स्त्री को एक महत्वपूर्ण पात्र बनाकर उसकी समस्याओं को विश्लेशित किया गया। स्त्री को नए झरोखे से देखने का मार्ग भी प्रशस्त किया गया। इसके लिए जयशंकर प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' लिया जा सकता है। पति के प्यार से वंचित नारी केवल हाथ बांधे बैठी नहीं रही। वह विकराल रूप धारण कर अपना हक हासिल करके ही रहती है। यही शारदा मिश्र के 'सूर्य पत्नी संज्ञा' में दिखाई देता है। 'न्याय' नाटक में नायिका अपने पति के सामने झुकना पसंद नहीं करती। वह अपनी मौत को इससे अच्छा मानती है। चाहने वाले की भलाई को ज़्यादा अहमियत देकर खुद को उससे दूर रखने की शक्ति मोहन राकेश की नायिका मल्लिका प्रकट करती है। प्रस्तुत नाटक यह दिखाता है कि नारी, मन से कितनी सबल है। अर्थात् आसानी से स्त्री को तोड़ा नहीं जा सकता। इसी का एक दूसरा रूप मन्नू भंडारी के 'बिना दीवारों के घर' में देख सकते हैं। परिवार को बचाने की पूरी कोशिश शोभा की ओर से होती है। वह यह समझ जाती है कि उसकी कोशिशें निष्प्रयोजन हो रही हैं तो सब छोड़कर चले जाने की हिम्मत दिखाती है। इसी तरह विष्णु प्रभाकर के नाटक 'अब और नहीं' में माँ एक दिन अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए घर से निकल पड़ती है। शांति मेहरोत्रा की नायिका यह समझ जाती है कि दुनिया के डर से जीने से ज़िंदगी गतिहीन हो जाएगी। 'माधवी' में नायिका अंत तक व्यर्थ ही गालव का साथ देती है पर उसकी सही पहचान होने पर जंगल की ओर चल देती है। 'अग्निलीक' में सीता को, प्रश्न करने वाली एक औरत के रूप में चित्रित किया है। नाटकों में स्त्री के पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक स्तर पर उसका रूप बदलने लगा। पुराण के पात्र नए संदर्भ में दिखने लगे। स्त्री अपनी अस्मिता को महत्व देने लगी। कई नाटकों में स्त्री की बदनियति को दर्शाने में पुरुष नाटककार उतारू हुए हैं। साथ ही उसे काम वासना प्रेरित नारी के रूप में चित्रित करने की कोशिशें भी हुई है। सुरेंद्र वर्मा, मुद्राराक्षस, शंकर शेष आदि ने स्त्री को सशक्त दिखाने केलिए काम को एक ज़रिया बनाया है। स्त्री विमर्श के संदर्भ में उसे सिर्फ इस रूप में चित्रित करना कहाँ तक उचित है, यह जाँचने की बात है। कुछ नाटककारों ने पुरुष पात्र को स्त्री बनाकर उसकी यातनाओं को समझने का प्रयास किया है। नाग बोड़स का 'नर-नारी'

इसके लिए एक उदाहरण है । महिला नाटककारों के पात्रों में यह पीड़ा ठीक- ठीक अंकित हुआ है । त्रिपुरारी शर्मा के 'सन् सत्तावन का एक किस्सा: अज़ीज़ुन निसा' में अज़ीज़ुन नाम की एक तवायफ देश के लिए लड़ना चाहती थी । खुद को साबित करने की इजाज़त उसे नहीं दी जाती । उसे पुरुष बनकर ही यह साबित करना पड़ता है । आगे आने केलिए स्त्री जितना संघर्ष करती है उसे सही ढंग से महिला नाटककारों ने चित्रित किया है । विष्णु प्रभाकर जैसे नाटककार यह चाहते हैं कि स्त्री अपने ऊपर किए जानेवाले अत्याचार का प्रतिरोध करें । इसी का नतीजा है भारतभूषण अग्रवाल का नाटक 'अग्निलीक' । सीता स्वयं को पुरुष सत्तात्मक समाज और पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर स्वत: अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करती है । नाटककारों ने स्त्री की अस्मिता की खोज की है और उसे समाज की उन्नति केलिए आवश्यक भी माना है ।

महिला नाटककारों ने स्त्री विषय को गंभीरता से लिया है । समाज के हर तबके की स्त्री कई तरह के शोषण की शिकार बनती है । नाटककारों ने इन सबको विस्तार से अपने नाटक में अंकित किया है । नाटक के अध्ययन से स्त्री के दर्द का व्यापक आयाम सामने आता है । नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक 'जी, जैसी आपकी मर्ज़ी !' में माँ की कोख से ही शुरू होनेवाले स्त्री शोषण को दीपा, सुल्ताना और बबली के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । पढ़ी-लिखी मेधा (नेपथ्य राग) अपने दफ्तर में इस बात से परेशान होती है कि उसके अधीन काम करनेवाले मर्द उसे मानते नहीं । इसका मतलब है कि स्त्री जहाँ पहुँचना चाहती थी पहुँच गई पर समाज की प्रतिक्रिया से उसका मन संतुष्ट नहीं है । परिवार में अपनों से ही वह कई तरह से शोषित होती है । पिता, भाई, मामा जैसे नज़दीकी रिश्तेदार ही लड़कियों का यौन शोषण करते हैं, जिसकी वजह से वह अपना संतुलन ही खो बैठती है । इस मुद्दे को लेकर तीन नाटककारों ने नाटक लिखें हैं- मीराकांत, विभा रानी, नादिरा ज़हीर बब्बर । शिक्षा एवं उच्च पद से स्त्री को वंचित रखने के षड्यंत्र का पोल खोलने वाला नाटक है 'नेपथ्य राग' । राजनीति के क्षेत्र में उसे कदम नहीं रखने दिया जाता । अगर उसे यह मिला भी तो उसे किसी भी तरह सत्ता से बाहर निकालने की साजिश चलाई जाती है । इस विषय को लेकर लिखा गया नाटक है 'उत्तर प्रश्न' और 'कंधे पर बैठा था शाप' । धर्म की नज़र में भी स्त्री पिछड़ी है । 'पुनरपि दिव्या' नाटक में जब दिव्या सब ओर से बेसहारा बन जाती है तब धर्म ने भी उसे आसरा नहीं दिया । विडंबना की बात यह है कि हर धर्म की पवित्रता हमेशा स्त्री पर निर्भर होती है । शादी के बाद ससुराल में स्त्री की सबसे अधिक नज़दीकी अपने पति से होती

है। जब यहाँ से उसे अपनापन नहीं मिलता तो ससुराल में उसकी स्थिति दर्दनाक होती है। 'सूर्य पत्नी संज्ञा' और 'रेशमी रुमाल' में इसका चित्रण हुआ है। स्त्री की ज़िंदगी में प्यार और शादी कभी-कभी उसके लिए आफत बन जाती है। कई नाटककारों ने इसको लेकर नाट्य रचनाएँ की हैं। यह एक ऐसी समस्या है जो सालों पहले भी मौजूद थी और आज भी पूरी ताकत के साथ मौजूद है। समाज में बहुत सारे 'नारी सुरक्षा केंद्र' दिखाई देते हैं। इन सभी जगहों में क्या स्त्री सुरक्षित है ? इसका जवाब ढूँढने का प्रयास कुसुम कुमार ने अपने नाटक में किया है। संरक्षक का नकाब पहनकर राजनेता क्या गुल खिलाता है, यह 'संस्कार को नमस्कार' में व्यक्त है। लड़की की शिक्षा की उपेक्षा की जानेवाली मानसिकता को 'धामपुर' और 'सकुबाई' में व्यक्त किया गया है। विस्तृत रूप से स्त्री के शोषित रूप का चित्रण किया गया है।

स्त्री के ऊपर अत्याचार किए जाते थे, तब वह इसे अपनी नियति मानकर चुपचाप सह लेती थी। पर स्त्री विमर्श के ज़ोर पकड़ने पर नाटककार स्वत्वबोध से युक्त पात्र निर्माण करने लगीं। स्त्री प्रतिरोध पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाने लगा। महिला नाटककारों के नाटक ज़्यादतर परिवार पर आधारित ही है। चूँकी अपनों से ही शोषण अनुभव करना पड़ता है इसलिए अधिकतर स्त्री पात्रों को अपनों के विरुद्ध ही झंडा उठाना पड़ता है। स्त्री का अपना घर न होने की वजह से उसे बात-बात पर घर से बाहर निकालने की धमकी दी जाती है। इसका प्रतिरोध करते हुए महिला नाटककारों ने कई पात्रों का सृजन इस तरह से किया है कि वह किसी के कहने से पहले ही पति का घर छोड़ देती है- जैसे, 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' में शोमा, 'शायद' में शशि, 'धामपुर' में प्रभा बुआ, 'शर्मिष्ठा देवी हॉस्टल' में केतकी। कहा जाता है कि स्त्री 'न' कहने में हिचकती है और परेशानियाँ मोल लेती है। नाटककारों ने इसको गंभीरता से लिया है। 'धरती रूठ गई' में रनियां, 'उसके बाद' में निशी, 'बहू' में बहू, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' में रानी, 'रेशमी रूमाल' में सुलक्षणा, 'शर्मिष्ठा देवी हॉस्टल' में केतकी, 'सकुबाई' में सकु आदि सधैर्य उन सभी बातों केलिए न कह देती हैं जिसे वे गलत मानती हैं। सवाल तभी उठाया जा सकता है जब किसी बात की समझ हो। महिला नाटककारों के पात्र सजग हैं इसलिए अपनी अस्मिता पर आँच नहीं आने देती और बिना हिचक के सवाल करती है। 'अमिया' में अमिया, 'गली दुलहनवाली' में दुलहन, 'बहू' नाटक में बहू, 'अक्स पहेली' में गज़ाला, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' में नटी, 'शर्मिष्ठा देवी हॉस्टल' नाटक में केतकी, 'नेपथ्य राग' नाटक में खना, 'छिन्नमस्ता' में प्रिया, 'दूसरा आदमी, दूसरी औरत'

में शोमा, 'विकट समस्या' में रचना, 'उसके बाद' नाटक में निशी आदि इसके उदाहरण हैं । स्त्री विमर्श की एक महत्वपूर्ण पहलू है, बेसहारा का सहारा बनना । ऐसे कई स्त्री पात्र स्त्री नाटकों में देख सकते हैं- 'अमिया' में भ्रमरा, 'गली दुलहनवाली' में दुलहन, 'सकुबाई' में सकु, 'शेमित्रा' में रोचना, 'रोटी और कमल का फूल' में रानी लक्ष्मीबाई, 'फैसला' नाटक में हसीना की सहेली आदि । स्वत्व बोध की पहचान कराके धैर्य के साथ मुसीबतों का सामना करने का संदेश देते हुए महिला नाटककारों ने नाट्यलेखन किया है । समाज में एक नया माहौल बनाना स्त्री-प्रतिरोध का लक्षय है, जिसमें मानवाधिकार पूर्ण रूप से सुरक्षित हो ।

स्त्री विमर्श के संदर्भ में जब स्त्री नाटकों को परखा गया, तब स्त्री को केंद्र बनाकर नाटककारों ने जिस तरह से कथावस्तु को नाटक का रूप दिया, उसमें भी विशिष्टता नज़र आती है । पात्रों का चयन और उन पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग आदि इन नाटकों को अनूठा बनाते हैं । नाटककारों ने अपनी बात को और आकर्षक बनाने केलिए एकल नाटक की शैली को अपनाया है । इसका प्रयोग नादिरा ज़हीर बब्बर, मीरा कांत और गिरीश रस्तोगी ने अपने नाटकों में किया है । अनुभूत भावनाओं को तीव्रता प्रदान करने केलिए 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', 'मंदाक्रांता', 'ज़हरीले काँटे' आदि में नाटककारों ने फ्लैशबैक की शैली अपनाई है । कथावस्तु को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने केलिए नाटक के भीतर नाटक की शैली भी नाटकों में अपनाई गई है । 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', 'अक्स पहेली', 'अंत हाज़िर हो', 'बी.ए.बीवियाँ', 'नूरजहाँ कहाँ है ?' आदि में यह शैली अपनायी गयी है । स्त्री की सबसे अच्छी सहेली वह खुद ही है । इसलिए अपने आपसे बातें करना सहज है । अत: स्वगत शैली महिला नाटककारों के द्वारा अपनाई गई विशेष शैली है । इसका प्रयोग 'सुनो शेफाली', 'उत्तर प्रश्न', 'दूसरा आदमी दूसरी औरत', 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', 'नेपथ्य राग', 'अक्स पहेली', 'अपने हाथ बिकानी' आदि में हुआ है । प्रभाव को बढ़ाने केलिए नाटक में प्रतीकात्मक मंच सामग्री का उपयोग तथा फैंटसी का प्रयोग भी किया गया है । इन सबके अतिरिक्त इसमें प्रयुक्त संवाद और भाषा शैली ध्यान देने योग्य तत्व है । कहीं-कहीं संवाद प्रतीकात्मक भी हुए हैं । चूँकि नाटक देखने हज़ारों लोग आते हैं, उसमें प्रयुक्त संवाद प्रेरणास्पद भी होता है । हर तबके के पात्र के अनुसार, उनके स्थान के अनुसार प्रांतीय शब्दावली का चयन हुआ है । स्त्री अपनी स्थिति को बदलने केलिए संघर्षरत रहती है । इसलिए प्रश्नात्क शैली का भरपूर प्रयोग हुआ है । जगह-जगह संवेदनात्मक भाषा का भी

प्रयोग हुआ है । नाटककारों ने समाज की भलाई को मद्दे नज़र रखते हुए संदेशात्मक भाषाई प्रयोग भी किए हैं । नाटक जब समाप्त होता है तब दर्शकों और पाठकों के मन में उसके दृश्य कुछ पल केलिए समा जाता है । इसका फायदा उठाने केलिए नाटककार सकारात्मक सोच के साथ नाटक का अंत करने की कोशिश करती हैं । नाटक की पहचान उसके शीर्षक से होती है इसलिए शीर्षक भी ऐसे दिये जाते हैं जिससे आस्वादक नाटक को देखने या पढ़ने केलिए उतारू हो जाते हैं । स्त्री विमर्श की दृष्टि से महिला नाटककारों के नाटकों को परखा जाए तो शीर्षक से लेकर उसके अंत तक स्त्री को सशक्त बनाने का अथक प्रयास अनुभव किया जा सकता है ।